अथ षष्ठसमुल्लासारम्भः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा॥ १॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥ २॥ मनु०॥

अब मनु जी महाराज ऋषियों से कहते हैं कि चारों वर्ण और चारों आश्रमों के व्यवहार कथन के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे कि जिस प्रकार का राजा होना चाहिये और जैसे इस के होने का सम्भव तथा जैसे इस को परमसिद्धि प्राप्त होवे उस को सब प्रकार कहते हैं॥ १॥ कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा यथावत् करे॥ २॥ उस का प्रकार यह है—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥

—ऋ० मं० ३। सू० ३८। मं० ६॥

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिल के (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा, राजार्य्यसभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

तं सभा च समितिश्च सेना च ॥१॥

—अथर्व० कां० १५। अनु० २। व० ९। मं० २॥

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥२॥

—अथर्व० कां० १९। अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥

(तम्) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संग्रामादि की व्यवस्था और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें॥ १॥

सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे (सभ्य) सभा के योग्य मुख्य सभासद् तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का (पाहि) पालन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें॥२॥

इस का अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहै। यदि ऐसा न करोगे तो—

राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः॥ विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥ १॥

–शत० कां० १३। अनु० २। ब्रा० ३॥

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहै तो (राष्ट्रमेव विश्या हन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करे। जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा। इसलिये–

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥

–अथर्व० कां० ६। अनु० १०। व० ९८। मं० १॥

हे मनुष्यो ! जो (इह) इस मनुष्य के समुदाय में (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का कर्त्ता शत्रुओं को (जयाति) जीत सके (न पराजयातै) जो शत्रुओं से पराजित न हो (राजसु) राजाओं में (अधिराजः) सर्वोपरि विराजमान (राजयातै) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः) सभापति होने को अत्यन्त योग्य (ईड्यः) प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (वन्द्यः) सत्करणीय (चोपसद्यः) समीप जाने और शरण लेने योग्य (नमस्यः) सब का माननीय (भव) होवे उसी को सभापति राजा करें।

इमं देवाऽ असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥१॥

–यजुः० अ० ९। मन्त्र ४०॥

हे (देवाः) विद्वानो राजप्रजाजनो तुम (इमम्) इस प्रकार के पुरुष को (महते क्षत्राय) बड़े चक्रवर्ति राज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सब से बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालन के लिये (असपत्नꣳसुवध्वम्) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपातरहित पूर्ण विद्या विनययुक्त सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब भूगोल शत्रुरहित करो॥ और–

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥

–ऋ० मं० १। सू० ३९। मं० २॥

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेयादि अस्त्र और शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) धनुष बाण करवाल (तलवार) आदि शस्त्र शत्रुओं के (पराणुदे) पराजय करने (उत प्रतिष्कभे) और रोकने के लिए (वीळू) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़ (सन्तु) हों (युष्माकम्) और तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) होवे कि जिस से तुम सदा

विजयी होवो परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उस के लिये पूर्व चीजें मत हों अर्थात् जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

महाविद्वानों को विद्यासभाऽधिकारी; धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो-जो निज के काम हैं उन-उन में स्वतन्त्र रहैं। पुनः उस सभापति के गुण कैसे होने चाहिये—

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ १॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥ २॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥ ३॥

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायु के समान सब के प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्त्तनेवाला, सूर्य्य के समान न्याय, धर्म, विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक; अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधनेवाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधनेवाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे॥ १॥

जो सूर्यवत् प्रतापी सब के बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपानेहारा, जिस को पृथिवी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो॥ २॥

और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य्य, सोम, धर्मप्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे, वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे॥ ३॥ सच्चा राजा कौन है—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥ १॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥ २॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥ ३॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्॥ ४॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति॥ ५॥
तस्याहुः सम्प्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्॥ ६॥

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते॥ ७॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्॥ ८॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च॥ ९॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता॥ १०॥ मनु०॥

जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है॥ १॥

वही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसी लिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं॥ २॥

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है॥ ३॥

विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे॥ ४॥

जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपातरहित विद्वान् हो तो॥ ५॥

जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी, विचार के करनेहारा, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चलानेहारा विद्वान् लोग कहते हैं॥ ६॥

जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है॥ ७॥

जब दण्ड बड़ा तेजोमय है उस को अविद्वान्, अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता। तब वह दण्ड धर्म से रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है॥८॥

क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता॥ ९॥

और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का सङ्गी यथावत् नीतिशास्त्र के अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है॥ १०॥ इसलिये—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ १॥
दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥ २॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा॥ ३॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये॥ ४॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥ ५॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥ ६॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति॥ ७॥ मनु०॥

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें॥१॥

न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लंघन कोई भी न करे॥ २॥

इस सभा में चारों वेद, हैतुक अर्थात् कारण अकारण का ज्ञाता न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब यह सभा कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहिये॥ ३॥

और जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् होके व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे॥४॥

यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उस को कभी न मानना चाहिये॥ ५॥

जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती॥ ६॥

जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जाननेवाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उस को कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं॥ ७॥

इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राज्यसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे। किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करे। और सब लोग ऐसे—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भाँश्च लोकतः॥ १॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥ २॥
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ ३॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥ ४॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ ५॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ ६ ॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ॥ ७॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ ८॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा॥ ९॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान्॥ १०॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः॥ ११॥ मनु०॥

राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान विद्याओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव रूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति हो सकें॥ १॥

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हठे हठाए रहैं। इसलिये रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहैं, क्योंकि जो अजितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता॥ २॥

दृढ़ोत्साही होकर जो काम से दश और क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन कि जिनमें फंसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके उन को प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे॥ ३॥

क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फंसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फंसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है॥ ४॥

काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं। देखो—मृगया खेलना, (अक्ष) अर्थात् चोपड़ खेलना, जुआ खेलनादि, दिन में सोना, कामकथा व दूसरे की निन्दा किया करना, स्त्रियों का अति संग, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना; वृथा इधर-उधर घूमते रहना ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं॥ ५॥

क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं—'पैशुन्यम्' अर्थात् चुगली करना, साहस विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना, द्रोह=द्रोह रखना, 'ईर्ष्या' अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देख कर जला करना, 'असूया' दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना, 'अर्थदूषण' अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों से धनादि का व्यय करना, वाग्दण्ड, कठोर वचन बोलना और पारुष्य=विना अपराध

कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं॥ ६॥

जिसे सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिस से ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े॥ ७॥

काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना, तीसरा स्त्रियों का विशेष सङ्ग, चौथा मृगया खेलना चे चार महादुष्ट व्यसन हैं॥ ८॥

और क्रोधजों में विना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीन क्रोध से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं॥ ९॥

जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इन से पूर्व-पूर्व अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से अन्याय से दण्ड देना, इस से मृगया खेलना, इस से स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इस से जुआ अर्थात् द्यूत करना और इस से भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है॥ १०॥

इस में यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फंसने से मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक-अधिक पाप करके नीच-नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायेगा। और जो किसी व्यसन में नहीं फंसा वह मर भी जायगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायगा। इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फंसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण, कर्म, स्वभावों में सदा वर्त्त के अच्छे-अच्छे काम किया करें॥ ११॥

राजसभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहिये—

मौलान् शास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्ष्यान् कुलोद्गतान्।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥ १॥
अपि यत् सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्॥ २॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च॥ ३॥
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्-पृथक्।
समस्तानाञ्च कार्य्येषु विदध्याद्धितमात्मनः॥ ४॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्रज्ञानवस्थितान्।
सम्यगर्थसमाहर्तॄन् अमात्यान् सुपरीक्षितान्॥ ५॥
निवर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्॥ ६॥
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्।
शुचीन् आकरकर्मान्ते भीरून् अन्तर्निवेशने॥ ७॥
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्॥ ८॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥ ९॥ मनु०॥

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, जिन

का लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात वा आठ उत्तम धार्मिक चतुर 'सचिवान्' अर्थात् मन्त्री करे॥ १॥

क्योंकि विशेष सहाय के विना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म्म एक से कैसे हो सकता है? इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है॥ २॥

इस से सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता किसी से (विग्रह) विरोध (स्थान) स्थिति समय को देख के चुपचाप रहना, अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो-जो देश प्राप्त हो उस-उस में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करे॥ ३॥

विचार से करना कि उस सभासदों का पृथक्-पृथक् अपना-अपना विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना॥ ४॥

अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे॥ ५॥

जितने मनुष्यों से कार्य्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े-बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को (अधिकारी) अर्थात् नौकर करे॥ ६॥

इन के आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े-बड़े कर्मों में और भीरु डरने वालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे॥ ७॥

जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जाननेहारा सब शास्त्रों में विशारद चतुर है; उस दूत को भी रक्खे॥ ८॥

वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूपयुक्त निर्भय और बड़ा वक्ता हो, वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है॥ ९॥ किस-किस को क्या-क्या अधिकार देना योग्य है—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ॥ १॥
दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा॥ २॥
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत्॥ ३॥
धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ ४॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते॥ ५॥

तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च॥ ६॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्त्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्॥ ७॥
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्॥ ८॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च॥ ९॥ मनु०॥

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिस से अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राजकार्य्य तथा सभा के आधीन सब कार्य्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करना अधिकार देवे॥ १॥

दूत उस को कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़ तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिस से शत्रुओं में फूट पड़े॥ २॥

वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा यत्न करे कि जिस से अपने को पीड़ा न हो॥ ३॥

इसलिये सुन्दर जङ्गल, धन धान्ययुक्त देश में (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुरुषों से गहन (महीदुर्गम्) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम्) जल से घेरा हुआ (वार्क्षम्) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बना के इस के मध्य में नगर बनावे॥ ४॥

और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उस में स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिये अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है॥ ५॥

वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करने हारे हों (शिल्पी) कारीगर, यन्त्र, नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो॥ ६॥

उस के मध्य में जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब ऋतुओं में सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिस में सब राजकार्य्य का निर्वाह हो वैसा बनवावे॥ ७॥

इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के यहां तक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य रूप गुणयुक्त हृदय को अतिप्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षणयुक्त अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे॥ ८॥

पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहै अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना॥ ९॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु॥ १॥

होते हैं इस से विमुख कभी न हो, किन्तु कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिये उन के सामने से छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसे काम करे। जैसा सिंह क्रोध में सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है वैसे मूर्खता से नष्ट भ्रष्ट न हो जावें॥ ५॥

युद्ध समय में न इधर-उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े हुए, न जिस के शिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न 'मैं तेरे शरण हूं' ऐसे को॥ ६॥

न सोते हुए, न मूर्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखने वालों, न शत्रु के साथी॥ ७॥

न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुष को, सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए, योद्धा लोग कभी मारें किन्तु उन को पकड़ के जो अच्छे हों बन्दीगृह में रख दे और भोजन आच्छादन यथावत् देवे और जो घायल हुए हों उन की औषधादि विधिपूर्वक करे। न उन को चिड़ावे न दुःख देवे। जो उन के योग्य काम हो करावे। विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के-बालों को अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियों को भी पाले। उन को अपनी माँ बहिन और कन्या के समान समझे, कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिन में पुनः पुनः युद्ध करने की शङ्का न हो उन को सत्कारपूर्वक छोड़ कर अपने-अपने घर व देश को भेज देवे और जिन से भविष्यत् काल में विघ्न होना सम्भव हो उन को सदा कारागार में रक्खे॥ ८॥

और जो पलायन अर्थात् भागे और डरा हुआ भृत्य शत्रुओं से मारा जाय वह उस स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर दण्डनीय होवे॥ ९॥

और जो उस की प्रतिष्ठा है जिस से इस लोक और परलोक में सुख होने वाला था उस को उस का स्वामी ले लेता है, जो भागा हुआ मारा जाय उस को कुछ भी सुख नहीं होता, उस का पुण्यफल सब नष्ट हो जाता है और उस प्रतिष्ठा को वह प्राप्त हो जिस ने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो॥ १०॥

इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि जो-जो लड़ाई में जिस-जिस भृत्य वा अध्यक्ष ने रथ घोड़े, हाथी, छत्र, धन-धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियां तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तेल आदि के कुप्पे जीते हों वही उस-उस का ग्रहण करे॥ ११॥

परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को देवें और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धन में से, जो सब ने मिल के जीता है, सोलहवां भाग देवे और जो कोई युद्ध में मर गया हो उस की स्त्री और सन्तान को उस का भाग देवे और उस की स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जायें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। जो कोई अपने राज्य की रक्षा, वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दवृद्धि की इच्छा रखता हो वह इस मर्यादा का उल्लंघन कभी न करे॥ १२॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्॥ १॥ २॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत्॥ ३॥
अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः॥ ४॥
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः॥ ५॥
वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्॥ ६॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद् वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः॥ ७॥ ८॥
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः॥ ९॥
मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥ १०॥
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥ ११॥
राष्ट्रस्य सङ्ग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसङ्गृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते॥ १२॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य सङ्ग्रहम्॥ १३॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च॥ १४॥
ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम्॥ १५॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम्॥ १६॥
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः॥ १७॥
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम्॥ १८॥
सताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः॥ १९॥
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥ २०॥
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्॥ २१॥ मनु०॥

राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे॥ १॥

इस चार प्रकार के पुरुषार्थ के प्रयोजन को जाने। आलस्य छोड़कर इस

का भलीभांति नित्य अनुष्ठान करे।।२।। दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा, नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा, रक्षित को वृद्धि अर्थात् ब्याजादि से बढ़ावे और बढ़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नित्य व्यय करे॥ ३॥

कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सब से वर्त्ताव रखे और नित्यप्रति अपनी रक्षा कर के शत्रु के किये हुए छल को जान के निवृत्त करे॥ ४॥

कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहै, जैसे कछुआ अपने अङ्गों को गुप्त रखता है वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे॥ ५॥

जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मच्छी पकड़ने को ताकता है वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और बल की वृद्धि कर शत्रु को जीतने के लिये सिंह के समान पराक्रम करे। चीता के समान छिपकर शत्रुओं को पकड़े और समीप आये बलवान् शत्रुओं से सस्सा के समान दूर भाग जाय और पश्चात् उन को छल से पकड़े॥ ६॥

इस प्रकार विजय करने वाले सभापति के राज्य में जो परिपन्थी अर्थात् डाकू लुटेरे हों उन को (साम) मिला लेना (दाम) कुछ देकर (भेद) फोड़ तोड़ करके वश में करे ।।७।। और जो इनसे वश में न हों तो अतिकठिन दण्ड से वश में करे॥ ८॥

जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे॥ ९॥

जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है॥ १०॥

जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों के कृशित करने से क्षीण हो जाते हैं वैसे ही प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बलादि बन्धुसहित नष्ट हो जाते हैं॥ ११॥

इसलिये राजा और राजसभा राजकार्य्य की सिद्धि के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से राजकार्य्य यथावत् सिद्ध हों। जो राजा राज्यपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा बढ़ता है॥ १२॥

इसलिये दो, तीन; पांच और सौ ग्रामों के बीच में राजस्थान रक्खें जिस में यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषों को रखकर सब राज्य के कार्यों को पूर्ण करे॥ १३॥

एक-एक ग्राम में एक-एक प्रधान पुरुष को रक्खें उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं वीश ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पांचवां पुरुष रक्खे ।। अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एक थाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया है यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्र से राजनीति का प्रकार लिया है॥ १४॥

इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा देवे कि वह एक-एक ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो-जो दोष उत्पन्न हों उन-उन को गुप्तता से दश ग्राम के पति

को विदित कर दे और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार वीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे॥ १५॥

और बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्त्तमान शतग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करे। वैसे सौ-सौ ग्रामों के पति आप सहस्राधिपति अर्थात् हजार ग्रामों के स्वामी को सौ-सौ ग्रामों के वर्त्तमान प्रतिदिन जनाया करें। (और बीस-बीस ग्राम के पांच अधिपति सौ-सौ ग्राम के अध्यक्ष को) और वे सहस्र-सहस्र के दश अधिपति दशसहस्र के अधिपति को और वे दश-दश हजार के दश अधिपति लक्षग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्त्तमान जनाया करें। और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौमचक्रवर्ति महाराजसभा में सब भूगोल का वर्त्तमान जनाया करें॥ १६॥

और एक-एक दश-दशसहस्र ग्रामों पर दो सभापति वैसे करें जिन में एक राजसभा में और दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहैं॥ १७॥

बड़े-बड़े नगरों में एक-एक विचार करने वाली सभा का सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक-एक घर बनावें, उस में बड़े-बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें। जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो वैसे-वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें॥ १८॥

जो नित्य घूमनेवाला सभापति हो उसके आधीन सब गुप्तचर अर्थात् दूतों को रक्खे। जो राजपुरुष और प्रजापुरुषों के साथ नित्य सम्बन्ध रखते हों और वे भिन्न-भिन्न जाति के रहैं, उन से सब राज और राजपुरुषों के सब दोष और गुण गुप्तरीति से जाना करे, जिनका अपराध हो उन को दण्ड और जिन का गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे॥ १९॥

राजा जिन को प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे वे धार्मिक सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर डाकुओं को भी नौकर रख के उन को दुष्ट कर्म से बचाने के लिये राजा के नौकर करके उन्हीं रक्षा करने वाले विद्वानों के स्वाधीन करके उन से इस प्रजा की रक्षा यथावत् करे॥२०॥

जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे उन का सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रक्खे कि जहाँ से पुनः लौटकर न आ सके क्योंकि यदि उस को दण्ड न दिया जाय तो उस को देख के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहैं ॥२१॥ परन्तु जितने से उन राजपुरुषों का योगक्षेम भलीभांति हो और वे भलीभांति धनाढ्य भी हों उतना धन वा भूमि राज की ओर से मासिक वा वार्षिक अथवा एक वार मिला करे और जो वृद्ध हों उन को भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यान में रक्खे कि जब तक वे जियें तब तक वह जीविका बनी रहै पश्चात् नहीं, परन्तु इन के सन्तानों का सत्कार वा नौकरी उन के गुण के अनुसार अवश्य देवे और जिस के बालक जब तक समर्थ हों उन की स्त्री जीती हो तो उन सब के निर्वाहार्थ राज्य की ओर से यथायोग्य धन मिला करे। परन्तु जो उस की स्त्री वा लड़के कुकर्मी हो जायें तो कुछ भी न मिले, ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा॥ १५॥
यदि तत्रापि सम्पश्येद्दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशङ्कः समाचरेत्॥ १६॥ मनु०॥

जब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है जो (आसन) स्थिरता (यान) शत्रु से लड़ने के लिये जाना (सन्धि) उन से मेल कर लेना (विग्रह) दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना (द्वैध०) दो प्रकार की सेना करके स्वविजय कर लेना (संश्रय) और निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना ये छः प्रकार के कर्म यथायोग्य कार्य्य को विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये॥ १॥

राजा जो सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो-दो प्रकार के होते हैं उन को यथावत् जाने॥ २॥

(सन्धि) शत्रु से मेल अथवा उस से विपरीतता करे परन्तु वर्त्तमान और भविष्यत् में करने के काम बराबर करता जाय यह दो प्रकार का मेल कहाता है॥३॥

(विग्रह) कार्य सिद्धि के लिये उचित व अनुचित समय में स्वयं किया वा मित्र के अपराध करने वाले शत्रु के साथ विरोध दो प्रकार से करना चाहिये॥४॥

(यान) अकस्मात् कोई कार्य्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ मिल के शत्रु की ओर जाना यह दो प्रकार का गमन कहाता है॥ ५॥

स्वयं किसी प्रकार क्रम से क्षीण हो जाय अर्थात् निर्बल हो जाय अथवा मित्र के रोकने से अपने स्थान में बैठ रहना यह दो प्रकार का आसन कहाता है॥६॥

कार्य्यसिद्धि के लिये सेनापति और सेना के दो विभाग करके विजय करना दो प्रकार का द्वैध कहाता है॥ ७॥

एक किसी अर्थ की सिद्धि के लिये किसी बलवान् राजा वा किसी महात्मा की शरण लेना जिस से शत्रु से पीड़ित न हो दो प्रकार का आश्रय लेना कहाता है॥ ८॥

जब यह जान ले कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात् करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगा तब शत्रु से मेल कर के उचित समय तक धीरज करे॥ ९॥

जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपने को भी समझे तभी शत्रु से विग्रह (युद्ध) कर लेवे॥ १०॥

जब अपने बल अर्थात् सेना को हर्ष और पुष्टियुक्त प्रसन्न भाव से जाने और शत्रु का बल अपने से विपरीत निर्बल हो जावे तब शत्रु की ओर युद्ध करने के लिये जावे॥ ११॥

जब सेना बल वाहन से क्षीण हो जाय तब शत्रुओं को धीरे-धीरे प्रयत्न से शान्त करता हुआ अपने स्थान में बैठा रहै॥ १२॥

जब राजा शत्रु को अत्यन्त बलवान् जाने तब द्विगुणा वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य्य सिद्ध करे॥ १३॥

जब आप समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी तभी किसी धार्मिक बलवान् राजा का आश्रय शीघ्र ले लेवे॥ १४॥

जो प्रजा और अपनी सेना और शत्रु के बल का निग्रह करे अर्थात् रोके उस की सेवा सब यत्नों से गुरु के सदृश नित्य किया करे॥ १५॥

जिस का आश्रय लेवे उस पुरुष के कर्मों में दोष देखे तो वहां भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशंक होकर करे॥ १६॥

जो धार्मिक राजा हो उस से विरोध कभी न करे किन्तु उस से सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रबल हो उसी के जीतने के लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करना उचित है।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः॥ १ ॥
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः॥ २॥
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्य्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते॥ ३॥
यथैनं नाभिसन्दध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः॥ ४॥ मनु०॥

नीति को जानने वाला पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इस के मित्र, उदासीन (मध्यस्थ) और शत्रु अधिक न हों ऐसे सब उपायों से वर्त्ते॥ १॥

सब कार्य्यों का वर्त्तमान में कर्त्तव्य और भविष्यत् में जो-जो करना चाहिये और जो-जो काम कर चुके उन सब के यथार्थता से गुण दोषों को विचारे॥२॥

पश्चात् दोषों के निवारण और गुणों की स्थिरता में यत्न करे। जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करने वाले कर्मों में गुण दोषों का ज्ञाता वर्त्तमान में तुरन्त निश्चय का कर्त्ता और किये हुए कार्यों में शेष कर्त्तव्य को जानता है वह शत्रुओं से पराजित कभी नहीं होता॥ ३॥

सब प्रकार से राजपुरुष विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस प्रकार राजादि जनों के मित्र उदासीन और शत्रु को वश में करके अन्यथा न करावे, ऐसे मोह में कभी न फंसे, यही संक्षेप से विनय अर्थात् राजनीति कहाती है॥ ४॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च॥ १॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
साम्परायिककल्पेन यायाद् अरिपुरं शनैः॥ २॥
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः॥ ३॥
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥ ४॥
यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद् बलम्।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्॥ ५॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥ ६॥
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः॥ ७॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥ ८॥

स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले॥ ९॥
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि॥ १०॥
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्॥ ११॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।
समवस्कन्दयेत्त्वैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा॥ १२॥
प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्मान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह॥ १३॥
आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते॥ १४॥ मनु०॥

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध और यात्रा की सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शस्त्रास्त्रादि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर के समाचारों को देने वाले पुरुषों को गुप्त स्थापन करके शत्रुओं की ओर युद्ध करने को जावे॥ १॥

तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में, दूसरा जल (समुद्र वा नदियों) में, तीसरा आकाशमार्गों को युद्ध बनाकर भूमिमार्ग में रथ, अश्व, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शस्त्र और अस्त्र खानपानादि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे-धीरे जावे॥ २॥

जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे, गुप्तता से शत्रु को भेद देवे, उस के आने जाने में उस से बात करने में अत्यन्त सावधानी रक्खे, क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये॥३॥

सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य प्रजाजनों को सिखावे जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ लड़ा जानते हैं। जब शिक्षा करे तब (दण्डव्यूह) दण्डा के समान सेना को चलावे (शकट०) जैसा शकट अर्थात् गाड़ी के समान (वराह०) जैसे सुअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी-कभी सब मिलकर झुण्ड हो जाते हैं वैसे (मकर०) जैसा मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना को बनावे (सूचीव्यूह) जैसे सूई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उस से सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षा से सेना को बनावे और जैसे (नीलकण्ठ) ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे॥४॥

जिधर भय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे, सब सेना के पतियों को चारों ओर रख के (पद्मव्यूह) अर्थात् पद्माकार चारों ओर से सेनाओं को रखके मध्य में आप रहै॥ ५॥

सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा का देने और सेना के साथ लड़ने लड़ाने वाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे, जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर से सब सेना का मुख रक्खे परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे नहीं

तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु की घात होने का सम्भव होता है॥ ६॥

जो गुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भों के तुल्य युद्धविद्या से सुशिक्षित धार्मिक स्थित होने और युद्ध करने में चतुर भयरहित और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो उन को चारों ओर सेना के रक्खे॥ ७॥

जो थोड़े पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावें और काम पड़े तो उन्हीं को झट फैला देवे। जब नगर दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तो सब 'सूचीव्यूह' अथवा 'वज्रव्यूह' जैसे दुधारा खड्ग, दोनों ओर युद्ध करते जायें और प्रविष्ट भी होते चलें वैसे अनेक प्रकार के व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावें जो सामने (शतघ्नी) तोप वा (भुशुण्डी) बन्दूक छूट रही हो तो 'सर्पव्यूह' अर्थात् सर्प के समान सोते सोते चले जायें, जब तोपों के पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपों का मुख शत्रु की ओर फेर उन्हीं तोपों से वा बन्दूक आदि से उन शत्रुओं को मारें अथवा वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने घोड़ों पर सवार करा दौड़ावें और मारें, बीच में अच्छे-अच्छे सवार रहें, एक बार धावा कर शत्रु की सेना को छिन्न-भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें॥ ८॥

जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथ घोड़े और पदातियों से और जो समुद्र में युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जल में हाथियों पर, वृक्ष और झाड़ी में बाण तथा स्थल बालू में तलवार और ढाल से युद्ध करें करावें॥ ९॥

जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़ने वालों को उत्साहित और हर्षित करें। जब युद्ध बन्ध हो जाय तब जिस से शौर्य और युद्ध में उत्साह हो वैसे वक्तृत्वों से सब के चित्त को खान-पान, अस्त्र-शस्त्र सहाय और औषधादि से प्रसन्न रक्खें। व्यूह के विना लड़ाई न करे न करावे, लड़ती हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक-ठीक लड़ती है वा कपट रखती है॥ १०॥

किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेर कर रोक रक्खें और इसके राज्य को पीड़ित कर शत्रु के चारा, अन्न, जल और इन्धन को नष्ट दूषित कर दे॥ ११॥

शत्रु के तालाब, नगर के प्रकोट और खाई को तोड़ फोड़ दे, रात्रि में उन को (त्रास) भय देवे और जीतने का उपाय करे॥ १२॥

जीत कर उन के साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समय समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा कर दे और उस से लिखा लेवे कि तुम को हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है उस के अनुसार चल के न्याय से प्रजा का पालन करना होगा ऐसे उपदेश करे और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो और जो हार जाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थों के दान से करे और ऐसा न करे कि जिस से उस का योगक्षेम भी न हो, जो उस को बन्दीगृह करे तो भी उस का सत्कार यथायोग्य रक्खे जिस से वह हारने के शोक से रहित होकर आनन्द में रहे॥ १३॥

क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित के मनोवाञ्छित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है और कभी उस को चिड़ावे नहीं, न हंसी और ठट्ठा करे, न उस के सामने हमने तुझ को पराजित किया है ऐसा भी

कहै, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करे॥ १४॥

हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्॥ १॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते॥ २॥
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः॥ ३॥
आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः॥ ४॥ मनु०॥

मित्र का लक्षण—यह है—राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है॥ १॥

धर्म को जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकार को सदा मानने वाले प्रसन्नस्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है॥ २॥

सदा इस बात को दृढ़ रक्खे कि कभी बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा वह दुःख पावेगा॥ ३॥

उदासीन का लक्षण—जिस में प्रशंसित गुणयुक्त अच्छे बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता करुणा भी, स्थूल लक्ष्य अर्थात् ऊपर-ऊपर की बातों को निरन्तर सुनाया करे वह उदासीन कहाता है॥ ४॥

एवं सर्वमिदं राजा सह सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत्॥ १॥

पूर्वोक्त प्रातःकाल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा सब मन्त्रियों से विचार कर सभा में जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल, उन को हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् कवायद कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि स्थान शस्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हों उन को निकाल, व्यायामशाला में जा, व्यायाम करके भोजन के लिये 'अन्तःपुर' अर्थात् पत्नी आदि के निवासस्थान में प्रवेश करे और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबल पराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न व्यञ्जन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिस से सदा सुखी रहै, इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे॥ १॥

प्रजा से कर लेने का प्रकार—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥ मनु०॥

जो व्यापार करने वाले वा शिल्पी को सुवर्ण चांदी का जितना लाभ हो, उस में से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे, और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार लेवे कि जिस से किसान आदि खाने पीने

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥१४॥ मनु०॥

सभा राजा और राजपुरुष सब लोग सदाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओं से निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गों में विवादयुक्त कर्मों का निर्णय प्रतिदिन किया करें और जो-जो नियम शास्त्रोक्त न पावें और उन के होने की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांधें कि जिससे राजा और प्रजा की उन्नति हो॥ १॥

अठारह मार्ग ये हैं—उन में से १—(ऋणादान) किसी से ऋण लेने देने का विवाद। २—(निक्षेप) धरावट अर्थात् किसी ने किसी के पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना। ३—(अस्वामिविक्रय) दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेच लेवे। ४—(सम्भूय च समुत्थानम्) मिल मिला के किसी पर अत्याचार करना। ५—(दत्तस्यानपकर्म च) दिये हुए पदार्थ का न देना॥ २॥

६—(वेतनस्यैव चादानम्) वेतन अर्थात् किसी की 'नौकरी' में से ले लेना वा कम देना अथवा न देना। ७—(प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्त्तना। ८—(क्रय-विक्रयानुशय) अर्थात् लेन देन में झगड़ा होना। ९—पशु के स्वामी और पालने वाले का झगड़ा॥ ३॥

१०—सीमा का विवाद। ११-किसी को कठोर दण्ड देना। १२-कठोर वाणी का बोलना। १३—चोरी डाका मारना। १४—किसी काम को बलात्कार से करना। १५-किसी की स्त्री वा पुरुष का व्यभिचार होना॥ ४॥

१६—स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यतिक्रम होना। १७-विभाग अर्थात् दायभाग में वाद उठना। १८-द्यूत अर्थात् जड़ पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतन को दाव में धर के जुआ खेलना। ये अठारह प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं॥ ५॥

इन व्यवहारों में बहुत से विवाद करने वाले पुरुषों के न्याय को सनातनधर्म के आश्रय करके किया करे अर्थात् किसी का पक्षपात कभी न करे॥ ६॥

जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलंक को निकालना और अधर्म का छेदन करते अर्थात् धर्मी को मान अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता उस सभा में जितने सभासद् हैं वे सब घायल के समान समझे जाते हैं॥ ७॥

धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है॥ ८॥

जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं जानो उन में कोई भी नहीं जीता॥९॥

मारा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी हम को न मार डाले॥ १०॥

जो सब ऐश्वर्यों के देने और सुखों की वर्षा करने वाला धर्म है उस का लोप करता है उसी को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं। इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं॥ ११॥

इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता

है और सब पदार्थ वा संगी शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् सब का संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग कभी नहीं छूटता॥ १२॥

जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहां अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं उनमें एक अधर्म के कर्त्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है॥ १३॥

जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य को मान्य होता है वहां राजा और सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं पाप के कर्त्ता ही को पाप प्राप्त होता है॥१४॥

अब साक्षी कैसे करने चाहिये—

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्॥ १॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः॥ २॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः॥ ३॥
बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्॥ ४॥
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते॥ ५॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते॥ ६॥
स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्॥ ७॥
सभान्तःसाक्षिणः प्राप्तान् अर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन्॥ ८॥
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः।
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता॥ ९॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥ १०॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥ ११॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्॥ १२॥
यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः॥ १३॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणं मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥ १४॥ मनु०॥

सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जानने वाले, लोभरहित, सत्यवादियों को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे इन से विपरीतों को कभी न करे॥ १॥

स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के द्विज, शूद्रों के शूद्र और अन्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों॥ २॥

जितने बलात्कार काम, चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपातन रूप अपराध हैं उन में साक्षी की परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी न समझे क्योंकि ये काम सब गुप्त होते हैं॥ ३॥

दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष की साक्षी के अनुकूल और दोनों के साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो द्विजोत्तम अर्थात् ऋषि महर्षि और यतियों की साक्षी के अनुसार न्याय करे॥ ४॥

दो प्रकार से साक्षी होना सिद्ध होता है एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से; जब सभा में पूछें तब जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोलें वे यथायोग्य दण्डनीय हों॥ ५॥

जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषों की सभा में साक्षी देखने और सुनने से विरुद्ध बोले तो वह (अवाङ्नरक) अर्थात् जिह्वा के छेदन से दुःखरूप नरक को वर्त्तमान समय में प्राप्त होवे और मरे पश्चात् सुख से हीन हो जाय॥ ६॥

साक्षी के उस वचन को मानना कि जो स्वभाव ही से व्यवहार सम्बन्धी बोले और सिखाये हुए इस से भिन्न जो-जो वचन बोले उस-उस को न्यायाधीश व्यर्थ समझें॥ ७॥

जब अर्थी (वादी) और प्रत्यर्थी (प्रतिवादी) के सामने सभा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों को शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा वैरिस्टर इस प्रकार से पूछें॥ ८॥

हे साक्षि लोगो ! इस कार्य्य में इन दोनों के परस्पर कर्मों में जो तुम जानते हो उस को सत्य के साथ बोलो—तुम्हारी इस कार्य में साक्षी है॥ ९॥

जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है। इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्त्ति को प्राप्त होता है, क्योंकि जो यह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है॥ १०॥

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है, इस से सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है॥ ११॥

आत्मा का साक्षी आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको जान के हे पुरुष ! तू सब मनुष्यों का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् सत्यभाषण जो कि तेरे आत्मा मन वाणी में है वह सत्य और जो इस से विपरीत है वह मिथ्याभाषण है॥ १२॥

जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर शङ्का को प्राप्त नहीं होता उस से भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते॥ १३॥

हे कल्याण की इच्छा करनेहारे पुरुष ! जो तू 'मैं अकेला हूं' ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामीरूप से परमेश्वर पुण्य पाप को देखने वाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर॥ १४॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते॥ १॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥ २॥
लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम्।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्ड्यौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्॥ ३॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥ ४॥
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च॥ ५॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्॥ ६॥
अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥ ७॥
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महद् आप्नोति नरकं चैव गच्छति॥ ८॥
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्॥ ९॥ मनु०॥

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे॥ १॥

इनमें से किसी स्थान में साक्षी झूठ बोले उस को वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे॥ २॥

जो लोभ से झूठी साक्षी देवे उस से १५।।=)(पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे, जो मोह से झूठी साक्षी देवे उस से ३=) (तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे, जो भय से मिथ्या साक्षी देवे उस से ६।) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे और जो पुरुष मित्रता से झूठी साक्षी देवे उससे १२॥) (साढ़े बारह रुपये) दण्ड लेवे॥ ३॥

जो पुरुष कामना से मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष क्रोध से झूठी साक्षी देवे उससे ४६॥।=) छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे, जो पुरुष अज्ञानता से झूठी साक्षी देवे उससे ३) (तीन रुपये) दण्ड लेवे और जो बालकपन से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १।।-) (एक रुपया नौ आने) दण्ड लेवे॥४॥

दण्ड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आंख, नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है॥ ५॥

परन्तु जो-जो दण्ड लिखा है और लिखेंगे जैसे लोभ के साक्षी देने में पन्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है परन्तु जो अत्यन्त निर्धन हो तो उस से कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना, तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे अर्थात् जैसा देश, जैसा काल और जैसा पुरुष हो उस का जैसा अपराध हो वैसा ही दण्ड करे॥ ६॥

क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है वह पूर्व प्रतिष्ठा वर्त्तमान और भविष्यत् में और परजन्म में होने वाली कीर्ति का नाश करनेहारा है और परजन्म में भी दुःखदायक होता है इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करे॥ ७॥

जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिस को दण्ड देना न चाहिये उस को दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है इसलिये जो अपराध करे उस को सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे॥ ८॥

प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उस की 'निन्दा' दूसरा 'धिक्' दण्ड अर्थात् तुझ को धिक्कार है तूने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तीसरा उस से 'धन लेना' और 'वध' दण्ड अर्थात् उस को कोड़ा या बेंत से मारना वा शिर काट देना॥ ९॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥ १॥
पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥ २॥
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥ ३॥
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥ ४॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥ ५॥
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्॥ ६॥
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥ ७॥
साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥ ८॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्॥ ९॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ १०॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मृत्युमृच्छति॥ ११॥
यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्॥ १२॥ मनु०॥

चोर जिस प्रकार जिस-जिस अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है उस-उस अङ्ग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे॥ १॥

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे॥ २॥

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा

दण्ड होना चाहिये। मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा उससे न्यून सात सौ गुणा और उस से भी न्यून को छः सौ गुणा इसी प्रकार उत्तर-उत्तर अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उस को आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिये। क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजा पुरुषों का नाश कर देवे, जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है। इसलिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये॥ ३॥

वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा॥ ४॥

ब्राह्मण को चौसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिये अर्थात् जितना जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उस को अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए॥ ५॥

राज्य का अधिकारी धर्म्म और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला राजा बलात्कार काम करने वाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे॥ ६॥

साहसिक पुरुष का लक्षण—

जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराध के दण्ड देने वाले से भी साहस बलात्कार काम करने वाला है वह अतीव पापी दुष्ट है॥ ७॥

जो राजा साहस में वर्त्तमान पुरुष को न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है॥ ८॥

न मित्रता, न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी जो राजा सब प्राणियों को दुःख देने वाले साहसिक मनुष्य को बन्धन छेदन किये विना कभी न छोड़े॥ ९॥

चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो, जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्त्तमान, दूसरे को विना अपराध मारनेवाले हैं उन को विना विचारे मार डालना अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये॥ १०॥

दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता, चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है॥११॥

जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भङ्ग करने वाला है वह राजा अतीव श्रेष्ठ है॥ १२॥

भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥ १॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥ २॥
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं करो भवेत्।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम्॥ ३॥
अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान् वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान् कोषमेव च॥ ४॥
एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान् समापयन्।
व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ५॥ मनु०॥

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उस को बहुत-बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीते हुई कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले॥ १ ॥

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ परस्त्री वा वेश्यागमन करे उस पापी को लोहे के पलङ्ग को अग्नि से तपा कर लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे॥ २ ॥

(प्रश्न) जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उस को कौन दण्ड देवे?

(उत्तर) सभा, अर्थात् उन को तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।

(प्रश्न) राजादि उन से दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे?

(उत्तर) राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें, अर्थात् उस श्लोक के अर्थ का स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उस का लोप करता है उस से नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?

(प्रश्न) यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनानेहारा वा जिलानेवाला नहीं है, इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिये ?

(उत्तर) जो इस को कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्ममार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा। और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें। वह जिस को तुम सुगम दण्ड कहते हो वह क्रोड़ों गुणा अधिक होने से क्रोणों गुणा कठिन होता है क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एक को मन भर दण्ड हुआ और दूसरे को पाव भर तो पाव भर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आध पाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं? जैसे एक को मन और सहस्र मनुष्यों को पाव-पाव दण्ड हुआ तो ६। सवा छः मन मनुष्य जाति पर दण्ड होने से अधिक और यही कड़ा तथा वह एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है।

जो लम्बे मार्ग में समुद्र की खाड़ियां वा नदी तथा बड़े नदों में जितना लम्बा देश हो उतना कर स्थापन करे और महासमुद्र में निश्चित कर स्थापन नहीं हो सकता किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिस से राजा और बड़े-बड़े नौकाओं के समुद्र में चलाने वाले दोनों लाभ युक्त हों वैसी व्यवस्था करे। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे, वे झूठे हैं। और देश-देशान्तर द्वीप-द्वीपान्तरों में नौका से जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उन को किसी प्रकार का दुःख न होने देवे॥ ३ ॥

राजा प्रतिदिन कर्मों की समाप्तियों को, हाथी, घोड़े आदि वाहनों को, नियत लाभ और खरच, **'आकर'** रत्नादिकों की खानें और कोष (खजाने) को देखा करे॥४॥

राजा इस प्रकार सब व्यवहारों को यथावत् समाप्त करता कराता हुआ सब पापों को छुड़ा के परमगति मोक्ष सुख को प्राप्त होता है॥ ५॥

(प्रश्न) संस्कृतविद्या में पूरी-पूरी राजनीति है वा अधूरी?

(उत्तर) पूरी है, क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्या से ली है। और जिन का प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लिये—

प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः॥ मनु०॥

जो-जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन-उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहाँ तक बन सके वहां तक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवें। युवावस्था में भी विना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना और न करने देना। ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना कराना। व्यभिचार और बहुविवाह को बन्ध करें कि जिस से शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहै। क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायें और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष ज्ञानी और सैकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय, आत्मा का नहीं तो भी राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था विना विद्या के कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्था के सब आपस में ही फूट-टूट, विरोध , लड़ाई-झगड़ा, करके नष्ट भ्रष्ट हो जायें। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अतिविषयासक्ति है वैसा और कोई नहीं है।

विशेषतः क्षत्रियों को दृढांग और बलयुक्त होना चाहिये क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राजधर्म ही नष्ट हो जायगा और इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि **'यथा राजा तथा प्रजाः'** जैसा राजा है वैसी ही उस की प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें ।

यह संक्षेप से राजधर्म का वर्णन यहां किया है। विशेष वेद, मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय में और शुक्रनीति तथा विदुरप्रजागर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देख कर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य करें और यह समझें कि—**'वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम'** यह यजुर्वेद का वचन है। हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उस के किंकर भृत्यवत् हैं। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।

अब आगे ईश्वर और वेदविषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये
षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ६॥